उच्च शिक्षा में स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थानों की व्यवहारिक उपादेयता

*अशोक कुमार दुबे**

किसी भी देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में उच्च शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। हमारी बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए सभी इच्छुक व्यक्तियों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना केंद्र तथा राज्य सरकारों के लिए संभव नहीं है। अतः पिछले कुछ वर्षों से उच्च शिक्षा की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थानों की अवधारणा का जन्म हुआ। आज उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्व-वित्तपोषित निजी शिक्षण संस्थाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। ऐसी कुछ शिक्षण संस्थाएँ गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने में अपना योगदान दे रहीं हैं। परंतु कुछ स्व-वित्तपोषित संस्थाएँ मापदंड और मानकों के अनुरूप काम नहीं कर रहीं हैं। प्रस्तुत लेख में स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता कार्यप्रणाली तथा उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली सुधारने के लिए सुझाव भी दिये गए हैं।

किसी भी देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में उच्च शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सामान्य तथा तकनीकी/ व्यवसायिक उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षण संस्थाओं की संख्या में उत्तरोतर वृद्धि हुई है परंतु देश की बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले यह बढ़ोत्तरी पर्याप्त नहीं है। सरकार सभी इच्छुक व्यक्तियों को उच्च शिक्षा उपलब्ध कराने में असमर्थ रही है। सभी इच्छुक व्यक्तियों को गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करने हेतु स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थाओं की संकल्पना की गई। आज बहुत-सी स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थायें कार्यरत हैं और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उनकी भूमिका-नकारा नहीं जा सकता। स्व-वित्तपोषी शिक्षण संस्थाएँ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कैसा कार्य कर रहीं हैं? उनकी क्या समस्याएँ हैं? उनके द्वारा क्या समस्याएँ पैदा हो रहीं हैं? तथा उनकी कार्यप्रणाली में कैसे सुधार किया जा

*बी.एड. विभाग, आर. बी. डिग्री कॉलेज, कालिंदी विहार,, नराइच, आगरा 06

सकता है? इन्हीं मुद्दों पर चर्चा की गई है इस लेख में।

शिक्षा वास्तविक अर्थों में सत्य की खोज है, यह ज्ञान और प्रकाश की अंतहीन यात्रा है। ऐसी यात्रा मानवतावाद के विकास के लिए ऐसे नए रास्ते खोलती है, जहाँ ईर्ष्या, घृणा, शत्रुता संकीर्णता और वैमनस्य का कोई स्थान न हो। यह मनुष्य को संपूर्ण, श्रेष्ठ, नेक इंसान और विश्व के लिए एक उपयोगी व्यक्ति बनाती है। सही मायनों में विश्व बंधुत्व ऐसी शिक्षा के लिए ढाल बन जाता है। यथार्थपरक शिक्षा मनुष्य की गरिमा और आत्मसम्मान बढ़ाती है। यदि शिक्षा की यथार्थता को प्रत्येक व्यक्ति समझ ले और मानवीय गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में उसे अपना ले तो रहने के लिए विश्व और बेहतर स्थान बन जायेगा।

स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ने 1948 में एक शिक्षा सम्मेलन में कहा था कि बुनियादी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि उसके बगैर वह बतौर नागरिक, जिम्मेदारियाँ बखूबी नहीं निभा सकता।

भारतीय अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में सबसे बड़ी समस्या जनसंख्या विस्फोट की है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या एवं सरकार की खस्ताहाल आर्थिक स्थिति के मद्देनज़र वैज्ञानिक, तकनीकी, औद्योगिक विकास तथा विभिन्न क्षेत्रों की गतिविधियों को सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए आवश्यक उच्च शिक्षित एवं दक्ष मानव संसाधन की उपलब्धता हेतु पर्याप्त मात्रा में सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था कर पाना सरकार के लिए संभव नहीं हो पा रहा है। सभी इच्छुक व्यक्तियों को शिक्षण सुविधा उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने जन सहयोग से शिक्षण संस्थाओं के संचालन की व्यवस्था प्रारंभ की। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् निर्मित भारतीय संविधान में शिक्षा प्रांतीय सूची में थी। जिसकी वजह से शिक्षा की व्यवस्था करने का दायित्व प्रांतीय सरकारों का ही था। अब शिक्षा केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त उत्तरदायित्व है। वर्तमान स्थिति यह है कि केंद्र और राज्य सरकारें मिलकर भी मांग के अनुसार आवश्यक सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थान उपलब्ध कराने में असमर्थ रहीं हैं। पिछले कुछ वर्षों से सरकार उच्च शिक्षा को स्व-वित्तपोषित योजना के अंतर्गत व्यवस्थित करने का प्रयास कर रही है। इसके तहत स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा हेतु मान्यता प्रदान की जा रही है तथा सरकारी अनुदानित संस्थाओं में स्व-वित्तपोषित पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

उच्च शिक्षण संस्थाओं के सफल संचालन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है। सरकार की खराब आर्थिक स्थिति के कारण उच्च शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक मदद उपलब्ध कराना सरकार के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। इसलिए निजी शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देना बंद कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप स्व-वित्तपोषित

शिक्षण संस्थान की अवधारणा प्रकाश में आयी। स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की संस्तुति करने तथा बढ़ावा देने के पीछे विभिन्न समितियों की रिपोर्ट तथा शिक्षा खर्च में होने वाली बढ़ोत्तरी प्रमुख कारण रहे हैं। पुनैया समिति (1992) ने उच्च शिक्षा के स्व-वित्तपोषण पर अपना विचार प्रकट करते हुए कहा कि कोई भी गरीब और गैर बराबरी से जूझ रहा हो वह विश्वविद्यालय में हो रही फिजूल खर्ची के अनुदान का समर्थन नहीं कर सकता अथवा संपन्न वर्ग को उच्च शिक्षा पर हो रहे खर्च से बचने की अनुमति नहीं दे सकता। इसलिए उच्च शिक्षा पर हो खर्च का हिस्सा उनसे लिया जाना चाहिए। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 24 अप्रैल 2000 को गठित समिति 'ए पॉलिसी फ्रेमवर्क फॉर रिफार्म इन एजुकेशन' ने उच्च शिक्षा हेतु निजी सहयोग लेने पर जोर दिया था। अंबानी बिड़ला समिति ने भी शिक्षा को बाजारोन्मुखी बनाने पर जोर दिया था।

उच्च शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में निजी शिक्षण संस्थाओं/स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की भूमिका को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है। कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ शिक्षा की गुणवत्ता के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिप्राप्त हैं। वहाँ से उत्तीर्ण छात्रों के लिए रोज़गार प्राप्ति की संभावनाएं अधिक होती हैं। उनका प्रबंधन व्यवस्थित होता है, छात्रों को मिलने वाली शैक्षणिक तथा प्रायोगिक सुविधाएँ अधिकतर उत्तम कोटि की होती हैं। उच्च शिक्षण में ही कुछ संस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिनका उद्देश्य केवल धनोपार्जन करना है, न कि गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्रदान करना। ऐसी शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली, शैक्षणिक स्तर, छात्रों को मिलने वाली सुविधाएँ, तथा अध्यापकों की आर्थिक दशा के आधार पर जो तस्वीर उभरती है, उससे निजी शिक्षण संस्थाओं की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाता है। ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में स्थापित निजी शिक्षण संस्थाओं में से कुछ तो ऐसी हैं, जो उच्च तथा व्यवसायिक शिक्षा के नाम पर उपाधि बेचने का काम करती हैं। उन्हें उपाधि बेचने की दुकान कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। यह एक विचारणीय प्रश्न है, कि क्या ऐसे शिक्षण संस्थान जो शिक्षा के नाम पर व्यापार करते हैं, उनसे समाज या राष्ट्र का कोई हित हो पा रहा है? इन्हीं बिंदुओं पर विचार केंद्रित कर समाज तथा राष्ट्र के नीति निर्धारकों के साथ जनसामान्य का ध्यान स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली तथा व्यवस्था की ओर आकर्षित करने का प्रयास इस लेख के माध्यम से किया गया है।

उच्च शिक्षा से आशय

उच्च शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है, उच्च या श्रेष्ठ शिक्षा अर्थात् सामान्य स्तर से ऊँची शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता है। प्रत्येक काल में उच्च शिक्षा का तात्पर्य तथा पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न था। वैदिक काल में प्राथमिक के पश्चात् अर्थात् गुरुकुलीय शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता था, किंतु पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न था। वर्तमान में उच्च शिक्षा का आशय महाविद्यालय तथा

विश्वविद्यालयी शिक्षा से लगाया जाता है। इस समय भारत में (10+2+3+2) की प्रणाली प्रचलित है, जिसमें (10+2) स्तर की शिक्षा को स्कूली शिक्षा तथा इसके बाद की शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता है। कला, विज्ञान, विधि, भाषा साहित्य, वाणिज्य आदि में स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियों को उच्च शिक्षा माना जाता है। तकनीकी, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, कम्प्यूटर तथा इलेक्ट्रोनिकी पाठ्यक्रम की स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा को व्यवसायिक शिक्षा माना जाता है। ये भी उच्च शिक्षा के अंतर्गत आती हैं। क्योंकि इनकी उपाधि देने का कार्य विश्वविद्यालय द्वारा किया जाता है। नर्सिंग, आईटीआई, पॉलिटेक्निक इत्यादि तकनीकी पाठ्यक्रम को उच्च शिक्षा में न मानकर तृतीय शिक्षा के अंतर्गत माना जाता है।

भारत में उच्च शिक्षा का विकास

भारत में उच्च शिक्षा कोई नई बात नहीं है, प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा ग्रहण करने की जिज्ञासा तथा व्यवस्था थी। उच्च शिक्षा का प्रारंभ वैदिक काल से माना जा सकता है, किंतु उस समय इसका स्वरूप भिन्न था। वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा के बाद की गुरुकुलीय शिक्षा को उच्च शिक्षा माना जाता था, इसकी अवधि सामान्यतः 12 वर्ष होती थी।

बौद्ध काल में भी प्राथमिक शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। इसकी अवधि वैदिक काल के समान ही 12 वर्ष थी, किंतु पाठ्यक्रम विस्तृत था। मुस्लिम शिक्षा में उच्च शिक्षा 8 वर्ष की थी, और इसका पाठ्यक्रम वैदिक काल एवं बौद्ध काल से भिन्न था। यूरोपीय इसाई मिशनरियों द्वारा भी प्राथमिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा हेतु कई शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। जिसमें जेसट कॉलेज (Jasiut College) और सेंट ऐनी कॉलेज (St.Anne College) प्रमुख हैं। परंतु इनमें शिक्षा का स्वरूप आधुनिक उच्च शिक्षा से भिन्न था। आधुनिक उच्च शिक्षा की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सन् 1781 में कलकत्ता में कलकत्ता मदरसा की स्थापना से मानी जाती है। इनमें मुस्लिम उच्च शिक्षा के साथ इंलैंड उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम चलाए गए थे। सन् 1791 में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा स्थापित बनारस कॉलेज में हिंदू उच्च शिक्षा तथा इग्लैण्ड के उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम साथ-साथ चलाए गए थे।

सन् 1800 में इंलैंड की उच्च शिक्षा प्रणाली पर आधारित विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना 1857 में की गई थी। चैनई, मुंबई तथा कोलकाता में लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर उच्च शिक्षा के विकास के लिए विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। सन् 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय तथा मैसूर विश्वविद्यालय, 1917 में पटना विश्वविद्यालय, 1918 में उस्मानिया विश्वविद्यालय तथा 1920 में ढाका विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। समय-समय पर कई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कुल 22 विश्वविद्यालय थे,

जिसमे बँटवारे के समय 19 भारत में रहे तथा 3 पाकिस्तान में चले गए।

क्रम संख्या	*वर्ष*	*वि. वि. की संख्या*	*समा. तथा व्यवसायिक महाविद्यालयों की संख्या*
1.	1881-82	4	68
2.	1901-02	5	179
3.	1921-22	12	207
4.	1936-37	17	366
5.	1946-47	19	452
6.	1950-51	27	843
7.	1960-61	45	1410
8.	1970-71	100	2953
9.	1980-81	132	4265
10.	1990-91	184	6140
11.	2001-02	291	12345

स्व-वित्तपोषण की अवधारणा

स्व-वित्तपोषण की अवधारणा है कि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करे वही उसका मूल्य अदा करे। अर्थात् स्व-वित्तपोषित संस्थान अपने संसाधनों से शिक्षण व्यवस्था करें। कहने का आशय यह है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों से ही आवश्यकतानुसार विभिन्न शुल्क प्राप्त किए जाएँ। एकत्रित की गई राशि से शिक्षण संबंधी गतिविधियों की व्यवस्था स्व-वित्तपोषित संस्थाओं में की जाती है। इस अवधारणा के तहत शिक्षण उपयोगी सहायक सामग्री, पुस्तकालय प्रायोगिक उपकरण, शिक्षा ग्रहण कर रहे छात्रों से लिए जा रहे शुल्कों के माध्यम से जुटाए जाते हैं।

स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थान

ऐसे शिक्षण संस्थान जिनका संचालन किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह या संगठन द्वारा किया जाता है और उसकी वित्तीय व्यवस्था उस संस्थान के संचालक द्वारा की जाती है, जो उस संस्थान में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से विभिन्न शुल्कों के रूप में वसूला जाता है, स्व-वित्तपोषित संस्थान कहलाते हैं। इन संस्थाओं को विभिन्न स्तर की कक्षाओं तथा विषयों के संचालन हेतु शासन की मान्यताप्राप्त संस्थाओं द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। इन संस्थाओं को शासन द्वारा कोई अनुदान राशि शैक्षणिक व्यवस्था हेतु नहीं दी जाती है। ये संस्थाएँ शासन के नियमानुसार अपनी बुनियादी संगठनात्मक संरचनाएं विकसित करती हैं। शासन एवं विश्वविद्यालय के नियमानुसार शिक्षक की व्यवस्था कर निर्धारित नियमों के अनुरूप छात्रों को प्रवेश देकर अध्ययन-अध्यापन की सुविधा उपलब्ध कराते हैं।

स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की अवधारणा के कारण

प्राचीन समय में जब शिक्षा की व्यवस्था निजी व्यक्तियों तथा सामाजिक और धार्मिक संगठनों के द्वारा की जाती थी, तब इसे सभी के लिए सुलभ करा पाना असंभव था। परिणामतः शिक्षा

की व्यवस्था का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर डाला गया किंतु जब राज्य सरकारें भी सभी व्यक्तियों को गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराने में असमर्थ दिखाई पड़ने लगीं तब शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल कर लिए जाने से शिक्षा व्यवस्था का उत्तरदायित्व केंद्र तथा राज्य सरकार दोनों पर आ गया। केंद्र तथा राज्य सरकारें मिलकर भी शिक्षा के प्रति अपने उत्तरदायित्व को सही ढंग से पूरा नहीं कर पा रहीं थीं। तो निजी संस्थाओं/स्व-वित्तपोषित संस्थाओं का सहयोग लेना विवशता हो गई। शिक्षा के क्षेत्र में स्व-वित्तपोषित संस्थाओं के सहयोग लेने के कई कारण हैं। उनमें से प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. राज्य तथा केंद्र सरकारों की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण आवश्यकतानुसार सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था करने में असमर्थ होना।
2. उच्च शिक्षण संस्थानों के संचालन में अत्यधिक व्यय भार का पड़ना।
3. जनसामान्य तक शिक्षा पहुँचाने के लिए अर्थात् सभी इच्छुक व्यक्तियों को उच्च शिक्षा सुविधा मुहैया उपलब्ध कराने के लिए।
4. सुव्यस्थित तथा सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थानों की उपलब्धा को बढ़ाना।
5. उच्च शिक्षा की व्यवस्था विकास खण्ड तथा तहसील स्तर पर उपलब्ध कराना।
6. महिलाओं में शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए गांव के पास ही उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना।

स्ववित्त पोषित शिक्षण संस्थाओं का योगदान: स्ववित्त पोषित संस्थाओं के अस्तित्व में आने का एक लाभ यह हुआ कि शासकीय शिक्षण संस्थाओं में छात्रों कें प्रवेश का दबाव कम हुआ है। उच्च शिक्षा के इच्छुक ऐसे छात्र /छात्राएँ जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, उन्होंने इन संस्थाओं में प्रवेश लेना आरंभ किया। वर्तमान में स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाएँ कला, वाणिज्य तथा विज्ञान संकाय की स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा के क्षेत्र में सुविधायुक्त शिक्षण केंद्र उपलब्ध कराकर समाज तथा राष्ट्र के विकास में अपना योगदान कर रहीं हैं।

ऐसा कहा जाता है कि स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में पर्याप्त कक्षाओं हेतु कमरे, पुस्तकालय, प्रायोगिक उपकरण, योग्य प्रतिभा संपन्न शिक्षकों की व्यवस्था होती है। यहाँ गुणात्मक उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है। कुछ संस्थाएँ राष्ट्रीय/राज्य स्तर पर ख्यातिप्राप्त हैं। कुछ शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा के बाद रोज़गार प्रदान करने के लिए प्लेसमेंट योजना संचालित है। ऐसी भी स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाएँ हैं जिनकी अंतिम वर्ष की परीक्षा से पूर्व ही कुछ व्यवसायिक कंपनियाँ काउंसलिंग कर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् विद्यार्थियों को रोज़गार के लिए अपने यहाँ आने का आग्रह करती हैं। स्व-वित्तपोषित संस्थाओं के योगदान को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। ये संस्थाएँ उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक शिक्षा प्रदान कर समाज तथा राष्ट्र को शिक्षित तथा व्यवसायिक कुशलता से परिपूर्ण मानव

संसाधन उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहीं हैं। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के प्रमुख योगदान निम्नानुसार हैं-

1. शासकीय शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों के उच्च शिक्षा में प्रवेश के दबाव को कम करने में मदद कर रहीं हैं।
2. आर्थिक दृष्टि से संपन्न वर्ग के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान कर रहीं हैं।
3. ये विद्याथियों को सुविधा संपन्न शिक्षण संस्थान उपलब्ध कराते हैं। इनकी अधिसंरचना उच्च कोटि की होती है।
4. ये संस्थाएँ सभी को शिक्षा प्रदान करने के कार्य में शासन का सहयोग कर समाज तथा राष्ट्र के विकास में उपयोगी भूमिका अदा कर रहीं हैं।

स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की समस्याएँ

जब शिक्षा के क्षेत्र में निजी व्यक्ति या संगठनों के आने का उद्देश्य सेवा भाव से सभी पात्र व इच्छुक व्यक्तियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना था, तब तक निजी शिक्षण संस्थाओं में कोई समस्या नहीं थी आर्थिक दृष्टि से संपन्न वर्ग शिक्षा संस्थानों को मुक्त हाथों से दान करने, मुफ्त शिक्षा तथा स्वास्थ्य की व्यवस्था करने के कार्यों का अपना पुनीत कार्य समझ कर करते थे। वर्तमान समाज के बदलते आर्थिक मानदंड के कारण आज नैतिक आदर्शों तथा मूल्यों के आधार पर कार्य करने वाले व्यक्ति पिछड़े ही दिखाई पड़ते हैं। आजकल अधिकांश व्यक्त्यिों का उद्देश्य प्रत्येक कार्य से आर्थिक लाभ प्राप्त करना होता है। शिक्षा के क्षेत्र में आने वाले अधिकांश निजी शिक्षण संस्थान, संचालक या संगठन धनोपार्जन के उद्देश्य से ही आते हैं, जिससे उनकी कार्यप्रणाली में पारदर्शिता नहीं होती जिसके कारण स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में कई समस्याएँ आती हैं, उनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं –

1. शिक्षण संस्थान हेतु भवन निर्माण तथा व्यवस्था के संचालन दोनों में ही अत्यधिक व्ययभार पड़ता है, जिसकी व्यवस्था संचालक को स्वयं करनी पड़ती है।
2. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की अधिसंरचना एवं शैक्षणिक व्यवस्था निर्धारित मापदण्ड के अनुरूप होने पर भी मान्यता प्रदान करने के कार्य से जुड़े अधिकांश कर्मचारी एवं अधिकारी बिना भेंट लिए मान्यता प्रदान करने की कार्यवाही नहीं करते हैं।
3. कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ अधिक धनोपार्जन के लालच में ऐसे छात्रों को ऐसे विषयों में प्रवेश दे देती हैं, जिनके संचालन की मान्यता संस्थान को नहीं होती। फलतः संचालक को साथ-साथ विद्यार्थी भी परेशान होते हैं।
4. प्रवेश के समय अपात्र विद्यार्थियों को प्रवेश देने का दबाव पड़ता है, तथा परीक्षा के समय नकल कराने का वाह्य दबाव भी संस्थान के ऊपर बनाया जाता है।

स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के कारण उत्पन्न समस्याएँ

प्राथमिक से लेकर सीनियर सेकेण्ड्री तक की शिक्षा अर्थात् स्कूली शिक्षा हेतु स्व-वित्तपोषित

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता देने पर कोई विशेष समस्या नहीं हुई किंतु उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के लिए जब स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान की गई तो कई समस्याएँ उत्पन्न हुईं। स्व-वित्तपोषित संस्थाओं की स्थापना व संचालन के लिए समुचित दिशा निर्देश व नियम बनाए गए हैं, किंतु अधिकाँश संस्थाओं द्वारा अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने की प्रवत्ति ने इन संस्थाओं को अपनी स्थापना के मूल उद्देश्य से भटका दिया है। अधिकाँशतः देखा गया है कि इन संस्थाओं के संचालकों द्वारा विश्वविद्यालय के नियमों और दिशानिर्देशों का उल्लंघन किया जाता है। तथा ऐसे शिक्षण संस्थाओं को मान्यताप्राप्त हो जाती है जिनके पास उपयुक्त मूलभूत सुविधाएँ नहीं होती। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के नियमों का सही ढंग से पालन नहीं किया जाता तथा कभी-कभी अपात्र लोगों को भी प्रवेश दे दिया जाता है।

इन संस्थाओं को परीक्षा केंद्र बनाने पर परीक्षाओं की सूचना सुनिश्चित कर पाना कठिन कार्य होता है, स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के कारण कई तरह की समस्याएँ उत्पन्न होतीं हैं। उनमें से प्रमुख निम्नानुसार हैं–

1. इनके द्वारा लिए जाने वाला शुल्क अत्यधिक है, फलतः शिक्षा आर्थिक दृष्टि से सामान्य वर्ग की पहुँच से बाहर होती जा रही है।
2. कुछ शिक्षण संस्थाएँ विश्वविद्यालय के अधिकारियों, कर्मचारियों तथा राजनीतिज्ञों के प्रभाव का उपयोग करके बिना आवश्यक सुविधा के ही मान्यता प्राप्त कर लेती हैं। आवश्यक सुविधा व संसाधनों के अभाव में गुणात्मक शिक्षा नहीं हो पाती है।
3. इस प्रकार की अधिकांश शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों से अधिक कार्य लिया जाता है तथा वेतन कम दिया जाता है। फलतः शिक्षक रुचि के साथ पूर्ण मनोयोग से अध्यापन कार्य नहीं करते हैं। जिससे अध्यापन कार्य प्रभावित होता है।
4. ऐसी संस्थाओं में नियुक्त किए गए शिक्षकों छः से आठ माह ही रखकर उनसे अध्यापन कार्य कराया जाता है तथा ऐसे शिक्षक रखे जाते हैं, जिनका शैक्षिणक स्तर निर्धारित मानक के अनुसार नहीं होता है। जिसकी वजह से विद्यार्थी को स्तर के अनुरूप शिक्षा नहीं मिल पाती है।
5. ऐसी शिक्षण संस्थाओं में से कुछ संस्थाएँ भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष योगदान करती हैं। उच्च शुल्क देकर प्रवेश प्राप्त करने वाला छात्र पढ़ने में कम रुचि लेता है। वह अन्य विकल्पों या अनुचित तरीके से आगे बढ़ना चाहता है। यदि इन्हें नौकरी मिल गई तो इनका उद्देश्य समाज सेवा करना नहीं होता बल्कि किसी भी तरीके से दिये गए पैसे की भरपाई करना इनका प्रमुख लक्ष्य होता है, जिससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
6. कुछ निजी शिक्षण संस्थाएँ नकल कराकर या अन्य तरीकों से उपाधि दिलवाने का कार्य करती हैं, परिणामस्वरूप यहाँ से उत्तीर्ण

छात्रों को रोज़गार ढूँढने में परेशानी होती हैं, क्योंकि इनकी योग्यताओं का मूल्य कम करके आंका जाता है।

7. ऐसी संस्थाएँ जो अपात्र छात्रों को कैपीटेशन फीस के आधार पर प्रवेश दे देती हैं, बाद में विश्वविद्यालय द्वारा इनका प्रवेश अमान्य कर दिये जाने पर विद्यार्थियों का आर्थिक नुकसान होने के साथ एक शैक्षणिक सत्र बेकार हो जाता है।
8. ऐसी संस्थाओं की मान्यता यदि समाप्त हो जाती है तो वहाँ के कर्मचारी की सेवा भी समाप्त हो जाती है, जिससे कर्मचारियों को आर्थिक तथा मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं द्वारा आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु कुछ सुझाव

वर्तमान समय में उच्च शिक्षा की बढ़ती हुई मांग के कारण इन संस्थाओं का सहयोग लेना आवश्यक है। आवश्यकता केवल विसंगतियों को दूर करने की है। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के ऊपर प्रमुख आरोप यह लगाया जाता है कि ये विद्यार्थियों तथा शिक्षकों का आर्थिक शोषण कर मानसिक अस्थिरता पैदा करती हैं, साथ ही कुछ शिक्षण संस्थाओं के द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता स्तर के अनुरूप नहीं होती है।

शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था मापदंड के अनुरूप नहीं होती। इन संस्थाओं द्वारा विद्यार्थियों को प्रवेश देने की पद्धति पर भी समय-समय पर सवालिया निशान लगते रहते हैं। यदि इन सभी लगने वाले आरोपों के निवारण के लिए सार्थक पहल की जाए तो स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थानों की अवधारणा उपयोगी साबित हो सकेगी। निम्नलिखित उपाय कर इन संस्थाओं की उपादेयता को सुनिश्चित किया जा सकता है–

1. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश चयन परीक्षा के आधार पर ही किया जाना चाहिए। प्रबंधकीय कोटे के अंतर्गत प्रवेश चाहने वालों की अलग चयन सूची बनाई जा सकती है। उनका शुल्क भी अलग से निर्धारित किया जा सकता है, किंतु प्रवेश चयन परीक्षा के आधार पर ही होना चाहिए।
2. प्रवेश परीक्षा के लिए भरे जाने वाले आवेदन पत्र के साथ विवरण प्राप्ति का उल्लेख कराया जाना चाहिए। जिसमें वर्ष भर लगने वाली पूरी फीस के साथ इस बात का भी उल्लेख होना चाहिए कि किस शिक्षण संस्थान के सामान्य तथा प्रबंधकीय कोटे की फीस कितनी होगी।
3. स्व-वित्तपोषित उच्च शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने संबंधी नियमों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।
4. शिक्षण संस्थाओं के लिए पाठ्यक्रम की मान्यता संबंधी समस्त औपचारिकताएँ प्रवेश प्रारम्भ करने के एक वर्ष पूर्व ही पूर्ण कर लेनी चाहिए।
5. यदि किसी वजह से किसी विषय की मान्यता समाप्त करना शिक्षा सत्र के बीच

में अपरिहार्य हो तो उससे छात्रों का नुकसान नहीं होना चाहिए। उन छात्रों की परीक्षायें किसी अन्य मान्यताप्राप्त संस्थान या शासकीय संस्थाओं के माध्यम से आयोजित कराई जानी चाहिए।

6. सरकार स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की कुल आय-व्यय का आकलन करे तथा उसके आधार पर विद्यार्थियों से लिए जाने वाले शुल्क का निर्धारण किया।
7. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं के मेधावी तथा निर्धन छात्रों के लिए अलग से सीटों का निर्धारण होना चाहिए तथा इनके अध्ययन में आने वाले व्यय भार का 75% भाग सरकार को वहन करना चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जानी चाहिए।
8. इन संस्थाओं में नियुक्त किए जाने वाले शिक्षकों की नियुक्ति चयन परीक्षा के आधार पर होनी चाहिए तथा शिक्षकों को पर्याप्त कारण के बगैर सेवा से पृथक नहीं किया जाना चाहिए।
9. ऐसे शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों को वही सुविधाएँ तथा वेतन मिलना चाहिए जो शासकीय तथा अनुदानित संस्थाओं के कर्मचारियों को प्रदान किया जाता है।
10. प्रबंधकों की आपसी सहमति तथा शिक्षकों की सहमति से प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात् शिक्षकों का स्थानान्तरण किया जाना चाहिए।
11. स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को परीक्षा केंद्र बनाए जाने की स्थिति में यदि वहाँ सामूहिक नकल का प्रकरण पाया जाता है तो वहाँ आगामी 5 वर्ष तक परीक्षा केंद्र नहीं बनाया जाना चाहिए ।
12. प्रत्येक तीन वर्ष में शिक्षण संस्थानों में उपलब्ध सुविधाओं तथा अन्य निर्धारित मापदण्डों का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण होना चाहिए तथा मापदण्ड पूरा न होने पर मान्यता खत्म कर देनी चाहिए तथा वहाँ कार्यरत कर्मचारियों को अन्य शिक्षण संस्थाओं से जहाँ आवश्यक हो संबद्ध किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

किसी कार्य को प्रारंभ करने का कोई न कोई सकारात्मक उद्देश्य अवश्य रहता है तथा कार्य का परिणाम कार्य करने के ढंग पर निर्भर करता है। अधिकांश कार्य लाभ की दृष्टि से ही प्रारम्भ किए जाते हैं किन्तु जब कार्य का उद्देश्य बदल जाता है तो उसमें हानि लगती है। समाज या राष्ट्र के हित में जो कार्य प्रारंभ किए जाते हैं, उनका लाभ यदि समाज के सभी वर्गों को न मिलकर केवल व्यक्ति विशेष को मिलने लगता है, तो उनकी प्रासंगिता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो जाता है। यही बात स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं पर लागू होती है। स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं को उच्च शिक्षा हेतु मान्यता प्रदान की गई परंतु इसका उपयोग कुछ शिक्षण संस्थाओं ने अपने लाभ के लिए करना शुरु कर दिया फलतः समाज व राष्ट्र को वांछित लाभ के स्थान पर हानि प्रतीत होने लगी। इसलिए इस पर विचार

करना पड़ रहा है कि क्या शिक्षा में स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थान की अवधारण गलत है? परंतु कुछ निजी शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली की वजह से सभी निजी शिक्षण संस्थाओं के बारे में धारणा पालना न्याय संगत नहीं होगा। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले बड़े पैमाने पर ऐसी शिक्षण संस्थाओं की संरचना व कार्य प्रणाली का सूक्ष्मता से अध्ययन करना होगा।

सुझाव

महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कई बार अपने भाषणों में इसका उल्लेख किया है कि हम सबको मिलकर भारत को 2020 तक विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में लाना है। यह उपलब्धि तभी हासिल हो सकती है जब उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा का विकास हो। उच्च शिक्षा अधिकांश लोगों के लिए सुलभ हो इसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार समाज के सक्षम व्यक्ति तथा संगठन आपस में मिलकर प्रयास करें। आज आवश्यकता इस बात की है कि उच्च शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा के कार्य में संलग्न स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं से संबंधित सभी पहलुओं की विवेचना कर उनकी कार्य प्रणाली तथा व्यवस्था का आकलन किया जाए तदानुसारए उचित निर्णय लेकर इन शिक्षण संस्थाओं की उपयोगिता समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकतानुसार बनाए रखने के लिए कठोर कदम उठाए जाने चाहिए। शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने के नियम कठोर हों तथा उनका सख्ती से पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इन शिक्षण संस्थाओं की नियमित जाँच हो तथा ऐसी संस्थाओं की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिए जिसमें आवश्यक संसाधन तथा योग्य शिक्षक उपलब्ध न हों।

निजी शिक्षण संस्थाओं को उपाधि विक्रय केंद्र में बदलने का प्रयास करना चाहिए। इन शिक्षण संस्थाओं की कार्यप्रणाली इस तरह सुनिश्चित की जानी चाहिए कि शिक्षकों तथा छात्रों का आर्थिक तथा मानसिक शोषण न हो। बल्कि शिक्षण कार्य हेतु उपयुक्त वातावरण का निर्माण हो जिसमें शिक्षा की प्रक्रिया प्रभावी हो सके और उसका लाभ समाज तथा राष्ट्र को पूर्ण रूप से मिल सके।

वर्तमान में आवश्यकता यह है कि स्व-वित्तपोषित शिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता को सही मायने में परखें। इनके उद्देश्यों प्रयोजनों को समझें और उसके अनुरूप सही दिशा में कार्य को अंजाम देकर इस व्यवस्था को उपयोगी बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

❖◆❖◆❖

संदर्भ

1. अग्रवाल सुभाष चंद्र एवं दीक्षित पवन शंकर 2005. *अध्यापक प्रशिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर चिंता के प्रभाव का अध्ययन, प्राइमरी शिक्षक* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली अंक जनवरी 2005. पृष्ठ 16-20
2. कुटारिया सुरेंद्र 2003. *उच्च शिक्षा की उपादेयता एवं गुणवत्ता, परिप्रेक्ष्य* राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान नीपा नई दिल्ली, अंक दिसंबर 2003. पृष्ठ 91-96
3. लाल रमन बिहारी 2004. *भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ,* रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ